साप्ताहिक
Live not just breaTHE

MPHIN/2015/63220
MP/IDC1528/16-18

दि कार्मिक पोस्ट

वर्ष : 6, अंक : 1 (प्रति बुधवार), इन्दौर, 26 अगस्त से 1 सितम्बर 2020 पेज : 8 कीमत : 3 रुपये

2070 तक मिट्टी के कटाव में 66 फीसदी तक की वृद्धि होगी

शोधकर्ताओं की एक अंतरराष्ट्रीय टीम ने बताया कि जलवायु परिवर्तन और भूमि पर अत्यधिक खेती के कारण, अगले 50 वर्षों में दुनिया भर में जल अपवाह (पानी के विभिन्न माध्यमों के द्वारा, जैसे नदियों, नालों, धाराओं, बाढ़ आदि) के कारण मिट्टी का नुकसान बहुत अधिक बढ़ सकता है। यह शोध स्विट्जरलैंड की बेसल विश्वविद्यालय के नेतृत्व में किया गया है।

भूमि कटाव के दूरगामी परिणाम होते हैं। उदाहरण के लिए, यह उपजाऊ मिट्टी को नुकसान पहुंचाता है, कृषि उत्पादकता को कम करता है और इसलिए इसके कारण दुनिया की आबादी के लिए खाद्य आपूर्ति खतरे में पड़ जाती है। एक वैश्विक मॉडल के आधार पर, इस नए अध्ययन में अनुमान लगाया गया है कि वर्ष 2070 तक पानी द्वारा होने वाले मिट्टी कटाव से होने वाले नुकसान किस तरह बढ़ सकते हैं।

भूमि कटाव वह प्रक्रिया है जिसमें मिट्टी को हवा और पानी द्वारा दूर ले जाया जाता है। वनों की कटाई के साथ-साथ कटाव को बढ़ाने वाली कृषि भूमि का अत्यधिक उपयोग और कृषि विधियां मिट्टी के नुकसान को बढ़ाने के लिए जिम्मेदार हैं। इसके अलावा, दुनिया के कुछ हिस्सों में जलवायु परिवर्तन से मिट्टी को बहाने वाली वर्षा की मात्रा में और वृद्धि की आशंका है। यह अध्ययन पीएनएएस पत्रिका में प्रकाशित किया गया है।

वर्ष 2070 तक भू-कटाव किस तरह बढ़ेगा

शोधकर्ताओं ने तीन परिदृश्यों के आधार पर अनुमान लगाया है, जो कि जलवायु परिवर्तन (आईपीसीसी) पर अंतर सरकारी पैनल द्वारा भी उपयोग किए जाते हैं। ये परिदृश्य 21वीं सदी में कई अलग-अलग सामाजिक-आर्थिक स्थितियों के आधार पर संभावित विकास को रेखांकित करते हैं।

जलवायु और भूमि के उपयोग में परिवर्तन के प्रभावों सहित, सभी परिदृश्यों के लिए, अध्ययन में शामिल लगभग 200 देशों में से अधिकांश में जलवायु परिस्थितियों के बावजूद, लगातार पानी से होने वाले कटाव का अनुमान लगाया गया है। इससे यह भी पता चलता है कि जलवायु परिवर्तन पहला कारक है जो मिट्टी के कटाव को बढ़ाता है। परिदृश्य के आधार पर, सिमुलेशन का अनुमान है कि 2070 तक मिट्टी के कटाव में 2015 के आंकड़ों की तुलना में 30 फीसदी से 66 फीसदी तक की वृद्धि होगी। यदि कृषि पद्धतियां नहीं बदलती हैं और ग्लोबल वार्मिंग को रोकने के उपाय नहीं किए जाते हैं, तो अध्ययन में अनुमान लगाया गया है कि सालाना 28 अरब से अधिक, अतिरिक्त मीट्रिक टन मिट्टी का नुकसान होगा। यह 2015 के अनुमानित 4300 करोड़ (43 बिलियन) टन से लगभग दो-तिहाई अधिक है।

भू-कटाव को रोकने के लिए स्थायी भूमि में की जानी चाहिए खेती

कटाव में तीव्र वृद्धि के लिए सबसे कमजोर स्थान - मध्यम-आय वाले उष्णकटिबंधीय और उप-उष्णकटिबंधीय देशों में हैं। उल्लेखनीय है कि भारत भी उष्णकटिबंधीय देशों में आता है। अध्ययनकर्ताओं का कहना है कि इसलिए यह ग्लोबल साउथ में देशों के लिए टिकाऊ कृषि प्रथाओं के अधिक व्यापक उपयोग को बढ़ावा देने के लिए महत्वपूर्ण है।

भारत में भू-कटाव

इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ रिमोट सेंसिंग (आईआईआरएस) की एक रिपोर्ट के अनुसार, भारत में होने वाली मिट्टी के कटाव की अनुमानित मात्रा 14.7 करोड़ (147 मिलियन) हेक्टेयर थी। इस व्यापक आंकड़े के तहत, 9.4 करोड़ (94 मिलियन) हेक्टेयर पानी से कटाव, 1.6 करोड़ (16 मिलियन) हेक्टेयर में अम्लीकरण, 1.4 करोड़ (14 मिलियन) हेक्टेयर में बाढ़ और 90 लाख (9 मिलियन) हेक्टेयर में हवा के कटाव का दावा किया गया। 29 प्रतिशत मिट्टी का समुद्र में मिल कर नष्ट होना बताया गया है, जबकि सिर्फ 61 प्रतिशत मिट्टी दूसरी जगह जमा होती है।

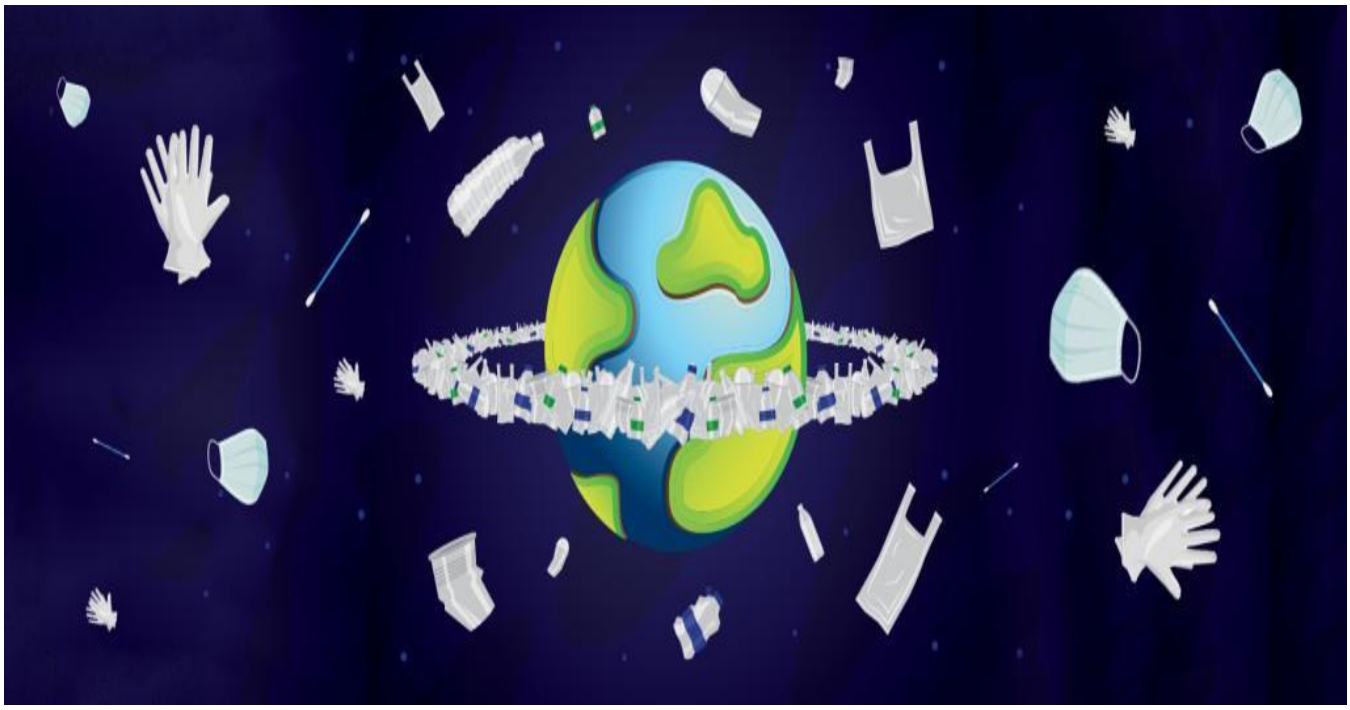

प्लास्टिक पुनर्चक्रण की राजनीति

कोविड- 19 एक ऐसी समस्या है जिसने हमारा पूरा ध्यान खींच रखा है। हालात ऐसे हो चुके हैं कि हम उन चीजों के बारे में बेखबर हो चले हैं जो हमारे भूतकाल का हिस्सा होने के साथ साथ हमारे भविष्य के निर्माण के लिए भी जिम्मेदार हैं। हमारे जीवन में ऐसा ही एक मुद्दा है प्लास्टिक का। यह एक सर्वव्यापी पदार्थ है जो हमारी भूमि और महासागरों में फैलकर उन्हें प्रदूषित करता है और हमारे स्वास्थ्य संबंधी तनाव में इजाफा करता है। वर्तमान में चल रही स्वास्थ्य आपातकाल जैसी स्थिति ने प्लास्टिक के उपयोग को सामान्य कर दिया है क्योंकि हम वायरस के खिलाफ सुरक्षा उपायों के रूप में अधिक से अधिक उपयोग करते हैं। दस्ताने, मास्क से लेकर बॉडी सूट तक जैसे प्लास्टिक प्रोटेक्शन गियर कोविड-19 के खिलाफ इस युद्ध में महत्वपूर्ण भूमिका अवश्य निभा रहे हैं लेकिन अगर इस मेडिकल कचरे को ठीक से नियंत्रित एवं प्रबंधित नहीं किया गया तो यह हमारे शहरों के कूड़े के पहाड़ों की संख्या में इजाफा ही करेगा।

प्लास्टिक की राजनीति का पूरा किस्सा पुनर्चक्रण नामक एक शब्द में सन्निहित है। वैश्विक उद्योग जगत ने यह तर्क लगातार सफलतापूर्वक दिया है कि हम इस अत्यधिक टिकाऊ पदार्थ का उपयोग करना जारी रख सकते हैं क्योंकि इसका एक बार प्रयोग कर लिए जाने के बाद भी प्लास्टिक को रीसाइकिल किया जा सकता है। हालांकि यह अलग बात है कि इसका अर्थ सबकी समझ से परे है। वर्ष 2018 में चीन ने पुन: प्रसंस्करण के लिए प्लास्टिक कचरे के आयात को रोकने के लिए नेशनल सोर्ड पॉलिसी तैयार की जिसके फलस्वरूप कई अमीर देशों का कठोर वास्तविकताओं से सामना हुआ। प्लास्टिक कचरे से लदे जहाजों को मलेशिया और इंडोनेशिया सहित कई अन्य देशों ने अपने तटों से वापस कर दिया था। यह कचरा किसी के काम का नहीं था। हर देश के पास पहले से ही प्लास्टिक का अंबार है।

आंकड़े बताते हैं कि 2018 के प्रतिबंध से पहले यूरोपीय संघ में रीसाइक्लिंग के लिए एकत्र किए गए कचरे का 95 प्रतिशत और संयुक्त राज्य अमेरिका के प्लास्टिक कचरे का 70 प्रतिशत चीन भेज दिया जाता था। चीन पर निर्भरता का मतलब था कि रीसाइक्लिंग मानक शिथिल हो गए थे। खाद्य अपशिष्ट एवं प्लास्टिक को साथ मिलाकर उद्योग जगत ने कचरे के नए उत्पाद, डिजाइन और रंग बनाने में महारत हासिल की थी। इस सब के कारण कचरा अधिक दूषित हो जाता और उसके पुनर्चक्रण में भी कठिनाइयां आतीं हैं। हालात यहां तक पहुंच गए कि कचरे में भी व्यापार ढूंढ लेने में माहिर चीन जैसे देश को भी इसमें कोई फायदा नहीं नजर आया।

भारत की प्लास्टिक अपशिष्ट समस्या समृद्ध दुनिया के देशों जितनी भयावह तो नहीं है, लेकिन यह लगातार बढ़ती जा रही है। प्लास्टिक कचरे पर केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड की नवीनतम वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार, गोवा जैसे समृद्ध राज्य प्रतिदिन प्रतिव्यक्ति 60 ग्राम प्लास्टिक का उत्पादन करते हैं। दिल्ली 37 ग्राम प्रतिव्यक्ति, प्रतिदिन के साथ इस रेस में ज्यादा पीछे नहीं है। राष्ट्रीय औसत लगभग 8 ग्राम प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन है। दूसरे शब्दों में, जैसे-जैसे समाज अधिक समृद्ध होगा वैसे-वैसे प्लास्टिक कचरे की मात्रा भी बढ़ेगी । यह समृद्धि की वह सीढ़ी है जिस पर चढ़ने से हमें बचना होगा।

हालांकि, हमारे शहरों में फैले प्लास्टिक अपशिष्ट की इस भारी मात्रा को देखकर यह अंदाजा तो लगाया ही जा सकता है कि हालात काबू से बाहर जा रहे हैं और कुछ ही समय में ऐसी स्थिति आएगी जब इस कचरे का निपटान हमारे बस में नहीं रहेगा। इस समस्या के समाधान के लिए अलग तरीके से सोचने और निर्णायक कदम उठाने की आवश्यकता है और आज हमारे समाज में इसकी भारी कमी है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने 2019 में स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर एक ओजपूर्ण भाषण दिया और हमें प्लास्टिक की आदत छोड़ने का आह्वान करते हुए वादा किया कि उनकी सरकार इसके इस्तेमाल में कटौती के लिए महत्वपूर्ण योजनाओं की घोषणा करेगी। लेकिन उनकी सरकार इसका ठीक उल्टा कर रही है।

यहां भी सारी राजनीति रीसाइक्लिंग को लेकर है। उद्योग जगत ने एक बार फिर नीति निर्माताओं को यह समझाने में कामयाबी हासिल कर ली है कि प्लास्टिक कचरा कोई समस्या नहीं है क्योंकि हम लगभग हर चीज को रीसाइकल कर पुन: उपयोग में ला सकते हैं। यह कुछ-कुछ तंबाकू सा है। अगर हम धूम्रपान करना बंद कर देते हैं, तो किसान प्रभावित होंगे। यदि हम प्लास्टिक का उपयोग करना बंद कर देते हैं, तो छोटे स्तर पर चलने वाले रीसाइक्लिंग उद्योग जिसका अधिकांश हिस्सा अनौपचारिक क्षेत्र में है, बंद हो जाएंगे और उनमें काम कर रहे मजदूर बेरोजगार हो जाएंगे। पूरी व्यवस्था चरमरा जाएगी और कई नौकरियां जाएंगी।

आइए पहले चर्चा करें कि उस कचरे का क्या होता है जिसे रीसाइकल नहीं किया जा सकता है? सभी अध्ययन (सीमित रूप में) दिखाते हैं कि नालियों या लैंडफिल में जमा प्लास्टिक अपशिष्ट में कम से कम रिसाइकिल करने योग्य सामग्री शामिल होती है। इसमें बहुस्तरीय पैकेजिंग (सभी प्रकार की खाद्य सामग्री), पाउच , (गुटखा या शैम्पू) और प्लास्टिक की थैलियां शामिल हैं। 2016 के प्लास्टिक प्रबंधन नियमों ने इस समस्या को स्वीकारा और कहा कि पाउच पर प्रतिबंध लगा दिया जाएगा और दो साल में हर तरह के बहुस्तरीय प्लास्टिक के उपयोग को समाप्त कर दिया जाएगा। वर्ष 2018 में इस कानून को लगभग पूरी तरह बदल दिया गया और केवल वैसे कचरे को इस श्रेणी में रखा जो रीसाइकल न किया जा सके। बशर्ते ऐसी कोई चीज हो।

यह कहना सही नहीं है कि सैद्धांतिक रूप से बहुस्तरीय प्लास्टिक या पाउच को रीसाइकल नहीं किया जा सकता है। उन्हें सीमेंट संयंत्रों में भेजा जा सकता है या सड़क निर्माण में उपयोग किया जा सकता है। लेकिन हर कोई जानता है कि इन खाली, गंदे पैकेजों को पहले अलग करना, इकट्ठा करना और फिर परिवहन करना लगभग असंभव है। इसलिए सब पहले के जैसा ही चल रहा है। हमारी कचरे की समस्या बरकरार है। दूसरा मुद्दा यह है कि हम वास्तव में रीसाइक्लिंग से क्या समझते हैं? हम जानते हैं कि प्लास्टिक के पुनर्चक्रण हेतु घरेलू स्तर पर सावधानी से कचरे का अलगाव करने की आवश्यकता है। यह हमारी और स्थानीय संस्थाओं की जिम्मेदारी बनती है। अत: अब समय या चुका है जब हम रीसाइक्लिंग की इस दुनिया को नए सिरे से निर्मित करें। मैं आपसे आने वाले हफ्तों में इसके बारे में चर्चा करूंगी।

भारत में इमारतों व निर्माण कार्यों के मलबे का केवल 1 फीसदी हिस्सा किया जा रहा है रिसाइकल- सीएसई

25 अगस्त 2020 को सीएसई द्वारा जारी एक नई रिपोर्ट से पता चला है कि भारत में कंस्ट्रक्शन एंड डेमोलिशन वेस्ट का केवल 1 फीसदी हिस्सा ही रिसाइकल किया जा रहा है। बाकि को खुले स्थानों या फिर लैंडफिल में छोड़ दिया जाता है जोकि वायु और जल को प्रदूषित कर रहा है।

बिल्डिंग मटेरियल प्रमोशन काउंसिल के अनुसार देश में हर साल कंस्ट्रक्शन एंड डेमोलिशन से जुड़ा करीब 15 करोड़ टन कचरा उत्पन्न होता है। जबकि उसकी आधिकारिक रूप से ज्ञात रीसाइक्लिंग क्षमता केवल 6,500 टन प्रतिदिन है। जोकि उसके करीब 1 फीसदी के बराबर है।

जबकि यदि गैर आधिकारिक आंकड़ों को देखें तो देश में उत्पन्न होने वाले कंस्ट्रक्शन एंड डेमोलिशन कचरा सरकारी अनुमान से तीन से पांच गुना अधिक है। ऐसे में सीएसई द्वारा जारी यह रिपोर्ट अनादर ब्रिक ऑफ द वाल- इम्प्रोविंग कंस्ट्रक्शन एंड डिमोलिशन वेस्ट मैनेजमेंट इन इंडियन सिटीज इस कचरे के प्रबंधन में सुधार करने और एक ठोस योजना प्रस्तुत करने की सिफारिश करती है।

2020 तक केवल 13 शहरों में स्थापित की गई है कंस्ट्रक्शन वेस्ट रीसाइक्लिंग की सुविधा

इस रिपोर्ट को सीएसई की महानिदेशक सुनीता नारायण ने एक ऑनलाइन राउंड टेबल के दौरान जारी की थी। उन्होंने बताया कि हमारे अध्ययन से पता चलता है कि 201। तक 53 शहरों में कंस्ट्रक्शन एंड डेमोलिशन वेस्ट को रीसाइक्लिंग करने के लिए प्लांट स्थापित करने की योजना थी। लेकिन 2020 तक केवल 13 शहरों ने ऐसा किया है। जबकि यदि निर्माण सामग्री की बात करें तो पत्थर, रेत, लौहा, एल्यूमीनियम और लकड़ी की मांग लगातार बढ़ती जा रही है, ऐसे में इस कचरे को रीसाइक्लिंग के बिना ऐसे ही फेंक देना सही नहीं है।

उन्होंने आगे बताया कि इस वेस्ट का एक बड़ा भाग फिर से पुन:उपयोग किया जा सकता है। जिससे निर्माण के लिए जो प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव बढ़ रहा है उसे कम किया जा सकता है। लेकिन इसके लिए सर्कुलर इकोनॉमी पर जोर देना जरुरी है, जिससे इस कचरे को फिर से संसाधन में बदला जा सके। इससे न केवल ऊर्जा की मांग घटेगी साथ ही बिल्डिंग्स और अन्य निर्माण के कारण पर्यावरण पर जो दबाव पड़ रहा है वो भी कम होगा।

सीएसई की एग्जीक्यूटिव डायरेक्टर अनुमिता रॉय चौधरी के अनुसार कंस्ट्रक्शन एंड डेमोलिशन से जो वेस्ट उत्पन्न हो रहा है वह देश के कई शहरों में जलस्रोत, सार्वजनिक स्थानों और हरित क्षेत्रों के लिए एक बड़ी समस्या बन गया है। उन्होंने बताया कि एक तरफ जहां शहरों में 2024 तक वायु प्रदूषण के स्तर में 20 से 30 फीसदी कटौती करने का लक्ष्य है वहीं दूसरी ओर इस मलबे से निकलने वाली डस्ट, वायु को और प्रदूषित कर रही है।

सीएसई के शोधकर्ताओं के अनुसार हालांकि कंस्ट्रक्शन एंड डेमोलिशन वेस्ट (सीएंडडीएस) के पुन:उपयोग में जो कानूनी बाधाएं थी, वो दूर हो चुकी हैं इसके बावजूद इस कचरे के पुन:उपयोग की स्थिति अभी भी खराब बनी हुई है। गौरतलब है कि भारतीय मानक ब्यूरो ने भी कंस्ट्रक्शन एंड डेमोलिशन वेस्ट को रीसायकल करने से बने कंक्रीट के उपयोग को अनुमति दे दी है। इसके साथ ही द कंस्ट्रक्शन एंड डिमोलिशन वेस्ट रूल्स 2016 में भी रिसाइकल मैटेरियल के उपयोग को जरुरी कर दिया है।

स्वच्छ भारत मिशन में भी सीएंडडीएस वेस्ट मैनेजमेंट को दी है मान्यता

यहां तक कि स्वच्छ भारत मिशन ने भी सीएंडडीएस कचरा प्रबंधन की आवश्यकता को मान्यता दी है। स्वच्छ सर्वेक्षण 2021के लिए भी सीएंडडी वेस्ट प्रबंधन के लिए रैंकिंग के 100 अंकों को दोगुना कर दिया गया है। जो प्रबंधन के बुनियादी ढांचे और अपशिष्ट प्रसंस्करण दक्षता के बीच समान रूप से विभाजित है। इसके अंतर्गत शहरों में जगह-जगह सीएंडडी वेस्ट कलेक्शन सिस्टम लगाना होगा। जिसमें कचरे की प्रसंस्करण दक्षता के आधार पर रैंकिंग के अंक दिए जाएंगे। साथ ही इसमें एकत्र किये कचरे के पुन- उपयोग को भो ध्यान में रखा जाएगा।

अनुमिता रॉयचौधरी के अनुसार, स्वच्छ भारत मिशन और सीएंडडी वेस्ट रूल्स द्वारा इस कचरे को मान्यता देना एक नया अवसर प्रदान करेगा।

उनके अनुसार हमारे इस नए अध्ययन में कंस्ट्रक्शन एंड डेमोलिशन वेस्ट सम्बन्धी नियमों को लागु करने में सामने आने वाली चुनौतियों से लेकर तकनीकी और नियमों सम्बन्धी बाधाओं का विस्तृत विश्लेषण किया गया है। इसमें उन आवश्यक रणनीतियों की पहचान की है जिसकी मदद से नियमों को लागु किया जा सकता है और रिसाइकल मैटेरियल को तेजी से बाजार में लाया जा सकता है। साथ ही इस विश्लेषण में कई शहरों की जमीनी हकीकत की भी जांच की गई है।

किसके लिए किया जाता है पर्यावरण प्रभाव का आकलन

वर्तमान पीढ़ी का भावी पीढ़ियों के प्रति अनेक मानवीय दायित्व हैं जो दुनिया सहित भारत में पर्यावरण से संबंधित कानूनों और पर्यावरण प्रभाव के आकलन का बुनियादी वैज्ञानिक-दर्शन है। इस वैज्ञानिक दर्शन पर प्रतिपादित सिद्धांतों के अनुसार पर्यावरण प्रभाव के आकलन, कुछ महत्वपूर्ण आधार स्तंभों पर टिके हैं जो भावी पीढ़ियों के अधिकारों का प्रतिनिधित्व करते हैं। प्रथमत: यह भावी पीढ़ी के अंतर्पीढ़ी अधिकारों (इंटर जनरेशनल राइट्स) को पूर्ण मान्यता देते हैं। अर्थात पर्यावरण से जुड़े हुए वे तमाम कारक, जो भावी पीढ़ियों के नैसर्गिक अधिकार हैं, बुनियादी तौर पर पर्यावरण प्रभाव के आकलन का प्रथम संदर्भ बिंदु है। दूसरे, यह किसी भी पर्यावरणीय क्षति को रोकने वाले उन सभी उपायों की संभावनाओं की वकालत करते हैं जो नकारात्मक प्रभावों को न्यूनतम करता है अथवा कर सकता है। पर्यावरण प्रभाव के आकलन के इन बुनियादी सिद्धांतों का सार्थक सारांश यही है कि मूलत: पर्यावरण के अधिकार और मानव अधिकार संपूरक हैं। अर्थात पर्यावरण के सिद्धांतों का उल्लंघन करके मानवाधिकारों की रक्षा नहीं की जा सकती अथवा मानवाधिकारों का उल्लंघन समग्र पर्यावरण का भी नुकसान कर सकता है।

भारत में वर्ष 1976-77 के दौरान पहली बार जब भारत सरकार के योजना आयोग ने आधिकारिक तौर पर विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग को उन महत्वपूर्ण नदी-घाटी परियोजनाओं के समीक्षा का दायित्व दिया, जहां पर्यावरण और मानवधिकारों के उल्लंघन के प्रकरण सामने थे, तब उनका ध्येय मानवीय और पर्यावरणीय दोनों ही क्षतियों को समाप्त अथवा न्यूनतम करना था। विभाग के जमीनी आकलन में यह बात साफ थी कि वैधानिक मानकों के अभाव में प्रभावी रूप पर्यावरण और समाज दोनों के अधिकारों की रक्षा नहीं की जा सकती है। गौरतलब है कि यह उस समय की बात है जब जनहित, कुछ परिस्थितियों में देशहित अथवा समाजहित का पर्याय माना जाता था। यह जानना जरूरी है कि तब तक भारत में लगभग 2.4 करोड़ लोग जनहित की परियोजनाओं के परमार्थ के चलते बेजमीन हो चुके थे। यानि पर्यावरण सुरक्षा के क़ानून और पर्यावरण पर प्रभावों के आकलन के दौर आने से पहले ही विस्थापन और बेदखली की कहानी शुरू हो चुकी थी।

बाद के बरसों में इस समीक्षा के दायरे में उन समस्त परियोजनाओं को शामिल किया गया जिन्हें पब्लिक इन्वेस्टमेंट बोर्ड से अनुमति की प्रशासनिक आवश्यकता थी। अर्थात प्रारंभ में यह महज प्रशासनिक प्रक्रिया थी जिसे 23 मई 1986 को पर्यावरण (सुरक्षा) अधिनियम लागू होने पर वैधानिक शर्तों के अंतर्गत लाने की कवायद शुरू हुई। 27 जनवरी 1994 को पर्यावरण प्रभाव के आकलन की प्रथम वैधानिक अधिसूचना जारी हुई। पर्यावरण एवं वन मंत्रालय (भारत सरकार) द्वारा जारी रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2006 से 2018 के दौरान पर्यावरण प्रभावों के आकलन से संबंधित 45 आदेश/ निर्देश जारी किये गये। ये तमाम संशोधन और उसके पीछे की

राजनीति / विज्ञान उन सभी कठिन सवालों का कागजी जवाब बने जो वंचित और विस्थापित समाज के अधिकारों के प्रश्नों के परिप्रेक्ष्य में खड़े किये गये और कल्याणकारी राज्य के द्वारा विकास के विवादास्पद तर्कों और सन्देहास्पद सहूलियतों के साथ दिये गये। कुल मिलाकर यह पर्यावरणीय और मानवीय नुकसानों के बीच (असहज और अमानवीय) मध्यस्थता का दौर था /है।

मध्यस्थता के सैकड़ों उदाहरणों में से एक है तमनार की अपनी कथा। बात 1998 की है, जब छत्तीसगढ़ के रायगढ़ जिले के आदिवासी बहुल तमनार गांव के लोगों को बताया गया कि यहां ताप विद्युत योजना के जरिए विकास की महती आवश्यकता है। इस कहानी में रोजगार, संपन्नता, सम्मान और सक्षमता जैसे उन सभी जादुई तत्वों का घालमेल था, जो बेबस आदिवासी समाज को बुड़बक साबित करने के लिये पर्याप्त था। बावजूद तमाम तर्कों और तथ्यों के, ग्रामवासियों के दिलोदिमाग में भावी पीढ़ियों के अधिकारों को लेकर भय और आशंका थी। अंतत: तमनार, धौराभाठा, टपरेंगा और डोंगामहुआ सहित 52 गावों के लोगों ने एकजुट होकर परियोजना का विरोध करने का सर्वसम्मत निर्णय लिया। उन्हें यह खुशफहमी थी कि नई नवेली %पंचायत (विस्तार उपबंध) अधिनियम - 1996' के महत्वपूर्ण संवैधानिक अधिकारों के जोशो-खरोश में उनके आदिवासी पंचायतों के प्रस्ताव का सम्मान, सरकार और शेष समाज करेगी। बाद के कुछ ही बरसों में उनकी उम्मीदों की इस कथा का दुखांत बेरोजगारी, लूट, दमन और विपन्नता से हुआ। संयोगवश, पर्यावरण प्रभाव के आकलन और आदिवासी स्वशासन के वैधानिक प्रावधान तब तक सार्वजनिक रूप से घोषित किए जा चुके थे। किन्तु इसे धरातल में उतारने की तैयारी और साहस सरकार में तब थी और न आज है।

पर्यावरण और मानवाधिकारों के कानूनों की सबसे बड़ी त्रासदी केवल यह नहीं है कि इसे मजबूती के साथ लागू नहीं किया जा सका, बल्कि इस त्रासदी का दुखांत यह है कि इसका शिकार अब तक वो समाज ही होता रहा जिसे कायदे-कानूनों और कोरे योजनाओं की लालबुझक्कड़ी परिभाषाओं में विपन्न, कमजोर, गरीब और सीमान्त घोषित कर दिया गया है। विचित्र विरोधाभास है कि सरकार और समाज के द्वारा उनके जल, जंगल और जमीन के अधिग्रहण (और लूट) के फलस्वरूप जन्मी उनकी विपन्नता की कीमत पर खड़ी विकास की बुनियादें, तमाम पर्यावरण और मानवाधिकारों के उल्लंघन का इतिहास और वर्तमान दोनों है। छत्तीसगढ़ के तमनार, झारखण्ड के जादूगोड़ा, मध्यप्रदेश के डोमखेड़ी और उड़ीसा के बोरभाठा से चाहे जितने लोगों को देशहित के नाम पर बेजमीन किया गया हो उनके नाम अलग-अलग हो कर भी उनकी सरकारी पहचान अब केवल और केवल %वंचित और कमजोर% वर्ग की रह गयी है।

ऐसे में आज पर्यावरण प्रभाव के आकलन के प्रस्तावित प्रावधान जब जनहित, देशहित और समाजहित में सुलझे-उलझे तर्क रखते हैं तो उस पूरे वंचित समाज की प्रतिक्रिया स्वाभाविक है जिसने अब तक विकास के नाम पर केवल खोया ही है। विकास को अक्सर शेष समाज का विशेषाधिकार मान लिया गया। वास्तव में यह सार्वजनिक अनुसंधान होना बाकी है कि तथाकथित देशहित वाली तमाम परियोजनाओं के वास्तविक लाभार्थी आखिर कौन हैं ? क्या शेष समाज को मालूम है कि जिन आदिवासियों के आजा-पुरखा की जमीनें खोदकर कोयला निकाला गया और जिनकी बस्तियों को नेस्तनाबूद कर दिया गया आखिर वो अब कहां और किन हालातों में हैं ? क्या वे जानना चाहते हैं कि जिनकी पवित्र नदियों को प्रदूषित नालों में बदल दिया गया आखिर वे प्यासे लोग कहां चले गये? क्या वो उन सुखवासियों से मिलना चाहेंगे, जिनके जंगलों और खेतों को विकास की भट्ठियों में बदल दिया गया ? क्यों नहीं उस पूरे संपन्न समाज में इतनी ईमानदारी, इतनी मर्यादा और इतनी कुब्बत होनी ही चाहिये कि वो कम से कम अपने बच्चों को यह बताये कि उनके निजी संपन्नता की खातिर, सार्वजनिक विपन्नता के नेपथ्य में धकिया दिये गये गुमनाम लोग कौन हैं? और आखिर कौन इन सबके लिये जवाबदेह है?

पर्यावरण प्रभाव के आकलन का मकसद यदि केवल कागजी कवायद है, तो जाहिर है इन अनुत्तरित सवालों के सरल-कठिन जवाबों की कोई जरूरत है ही नहीं। यदि पर्यावरण के प्रभाव के आकलन का उद्येश्य, केवल संभावित नुकसान की तकनीकी समीक्षा और राजनैतिक समाधान के रास्ते हैं, तब भी जवाबों का आग्रह बेमानी ही होगा। लेकिन यदि संशोधनों के केंद्र में, हाशिये पर धकेल दिये गये उन लाखों-करोड़ों लोगों के विपन्नता की मौलिक कथा में आज और अब उम्मीदों का नया संसार गढ़ना है तो समाज और सरकार दोनों के भीतर, केवल और केवल सत्य बोलने और स्वीकारने का साहस भर चाहिये। अधिकारों का नया अध्याय यहीं से शुरू होगा।

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक सोनल मेहता केलिए प्रतीक्षा ग्राफिक्स, 127 देवी अहिल्या मार्ग, इंदौर (म.प्र.) से मुद्रित एवं 209-बी शहनाई रेसीडेंसी-2 कनाड़िया रोड इंदौर (म.प्र.) से प्रकाशित। संपादक: डॉ. सोनल मेहता फोन : 0731-2595008 Mail.sonal12mehta@yahoo.co.in 9755040008